इकाई 3 रामायण, महाभारत एवम् अर्थशास्त्र में वास्तु

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 रामायण, महाभारत एवम् अर्थशास्त्र में वास्तु : संक्षिप्त परिचय
3.3 रामायण में वास्तु का स्वरूप
3.4 महाभारत में वास्तु का स्वरूप
3.5 अर्थशास्त्र में वास्तु का स्वरूप
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्न
3.9 उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- रामायणकालीन वास्तुशास्त्र के स्वरूप को बताने में कुशल होंगे।
- महाभारतकालीन वास्तु के स्वरूप को विवेचित करने में दक्ष होंगे।
- कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में वास्तु के स्वरूप को वर्णित करने में समर्थ होंगे।
- अर्थशास्त्र सम्मत दुर्ग निर्माण पद्धति को प्रकाशित करने में कुशल होंगे।
- कौटिल्य के अनुसार वास्तु सम्मत दुर्ग सन्निवेश विधि को विवेचित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

वास्तुशास्त्र की परम्परा अत्यन्त समृद्धशाली है। इस शास्त्र का अतीत जितना गौरवशाली था वर्तमान भी उतना ही महत्वशाली है।हमारे प्राचीन शास्त्रों में वास्तु

विद्या के अनेक प्रमाण मिलते हैं। वेदों,पुराणों रामायण,महाभारत आदि अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों का आलोड़न करने पर वास्तु शास्त्र के विविध प्रमाण हमें दृष्टिगोचर होते हैं। रामायण,महाभारत तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दुर्ग निर्माण की विधि, दुर्ग-निवेश इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है, जो उस काल में भी वास्तु शास्त्र सम्मत गृह, भवन, प्राचीर आदि निर्माण के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं विषयों का अध्ययन करेंगे।

3.2 रामायण, महाभारत एवम् अर्थशास्त्र में वास्तु : संक्षिप्त परिचय

रामायण एवं महाभारत के वर्णनों का आधार ग्रहण करना है, जहाँ वास्तु-विद्या के सिद्धान्तों के का आस्वादन करके तत्कालीन वास्तु-विद्या के उज्ज्वल रूप का अनुभव किया जा सकता है। उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ की वास्तु-विद्या के प्रवर्त्तक विश्वकर्मा और मय के निर्देश तो मिलते ही हैं, साथ ही साथ गृह्य-सूत्रों में प्रतिपादित वास्तु-विद्या के भी दर्शन होते हैं। परन्तु विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वास्तु-विद्या एवं कला के वैज्ञानिक पक्ष का पूर्ण आभास भी प्राप्त होता है। रामायण में स्थपतियों के भेद, गृह- प्रभेद (प्रासाद, सौध, विमान, हर्म्य, सभा आदि) भूमि-वर्गीकरण, गृह-वर्ग जैसे 'पद्म', 'स्वस्तिक', 'वर्धमान' तथा 'नन्द्यावर्त (महाभारतीय) तथा विमान, राजवेश्म, सभा आदि के जो वर्णन आगे के शिल्पशास्त्रों में प्रतिपादित है, उनके भी दर्शन इनमें होते हैं। 'पुर-निवेश' की रूपरेखा जो आगे विकसित हुई है, उसके बहुत से संकेत यहाँ हैं। रामायण का अयोध्या वर्णन इस तथ्य का साक्षी है। द्वार आदि की परम्परा के विकसित बीज भी यहाँ मिलते हैं। इन संकेतों से महाकाव्यकालीन उन्नत वास्तुविद्या के विषय में दो राय नहीं हो सकती।

रामायण - वाल्मीकीय रामायण के मुख्य भाग का रचना-काल ई० पूर्व ५०० के लगभग माना जाता है। इस ग्रन्थ के कुछ इस काल के बहुत बाद में जोड़े गये। इस ग्रन्थ में 'स्वपति', 'वर्धकि', 'तक्षक', 'सूत्रधार' आदि शब्द मिलते हैं। भारतीय वास्तुशास्त्रों में इन शब्दों का प्रयोग विभिन्न कोटियों के कारीगरों के लिए किया गया है। रामायण में 'अनेक भूमि' (४,३३) 'सप्तभूमि' (२.२.४६) आदि प्रभृति शब्दों से अनेक मंजिल वाले भवनों का पता चलता है। भवनों को उनकी विशेषताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न कोटियों के अन्तर्गत रखा जाता था यथा- चतु:शाला, पद्म, स्वस्तिक, वर्धमान आदि। इसी प्रकार 'प्रसाद', 'विमान', 'हर्म्य', 'सौन्ध' आदि शब्दों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के राजप्रासादों के लिए हुआ है।

वाल्मीकि रामायण में हमें चार प्रकार के दुर्गो का उल्लेख मिलता है- (१) नादेय (नवी दुर्गा) (२) पार्वत्य (गिरि दुर्ग), (३) वन्म (वन दुर्ग) तथा (४) कृत्रिम (मानव निर्मित दुर्ग)। अयोध्या, किष्किन्धा, लंका-जैसे नगरों के वर्णनों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नगरों, दुर्गों तथा अन्तःपुरों की रक्षा हेतु दृढ़ रक्षा-प्राचीरों का निर्माण किया जाता था। उनके चारों ओर गहरी खाइयां खोदी जाती थी। नगरों के चारों ओर द्वार (गोपुर) बनाये जाते थे। रक्षा-प्राचीरों के ऊपर बुर्ज (अट्टालक) बनते थे। उनके ऊपर से शत्रुओं की गतिविधियों का निरीक्षण किया जा सकता था। राज- प्रासादों की सबसे ऊपर की मंजिल पर शिखरों, श्रृंगों एवं चन्द्रशालाओं का निर्माण किया जाता था। प्रासादों ने झरोखें तथा खिड़कियाँ होती थी। कुछ खिड़कियों में सोने की जालियाँ (हेम-जाल) लगायी जाती थी। प्रासादों को अलंकृत करने के लिए उनमें बाहर की ओर विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ उकेरी जाती थी। रावण का राज प्रासाद चिड़ियों, सर्पो, अश्वों आदि की रत्नजटित प्रतिमाओं से कहा गया है।

साधारण भवनों तथा प्रासादों के अतिरिक्त रामायण में 'बन्दी', देवायतन', 'यूप' प्रभूति शब्दों का उल्लेख हुआ है। 'सभा' (यज्ञशाला) का विवरण भी मिलता है। उनका सम्बन्ध विष्ट तथा सामान्य जन दोनों वर्गों के धार्मिक जीवन से था।

रामायण में गृहों एवं प्रासादों के वर्णन में कहीं-कहीं अतिशयोक्ति मिलती है। रत्न- जटित

खिड़कियों, चमकीली फर्शों तथा सोने-चांदी की दीवारों के विवरण अनेक स्थलों पर मिलते हैं। इससे यह कहना कठिन है कि निर्माण कार्य के लिए किस सामग्री का प्रयोग किया जाता था। सभा-भवनों तथा वेदिकाओं के निर्माण में ईंटों का प्रयोग होता था। कुछ भवन पत्थर के बने (शिलागृह) होते थे। स्तम्भों के निर्माण में भी पत्थर का इस्तेमाल होता था।

महाभारत- वर्तमान् रूप में उपलब्ध महाभारत को विद्वानों ने ई० दूसरी में पूर्ण हुआ मानते हैं। इसके कुछ अंशों को विवेच्य युग में रचित कहा जा सकता है। महाभारत के अनेक सन्दर्भों से प्राचीन भारतीय स्थापत्य पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है। इस युग तक 'वास्तु विद्या का पर्याप्त विकास हो चुका था। विश्वकर्मा तथा मय के नामों का उल्लेख क्रमश: देवताओं तथा दानवों के कुशल कारीगरों के रूप में हमें मिलता है। इन्द्रप्रस्थ नगर के सम्बन्ध में जो विस्तृत विवरण महाभारत में मिलते हैं, वे नगर-निर्माण योजना पर प्रकाश डालते हैं। महाभारत में छह प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हुआ है: (१) धन्य दुर्ग, (२) महि दुर्ग, (३) गिरि दुर्ग, (४) मानुष्य दुर्ग, (५) मृद् दुर्ग तथा (६) वन दुर्ग। इस ग्रन्थ में उदक दुर्ग का उल्लेख नहीं मिलता। दुर्गों की ही भाँति लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत विभिन्न प्रकार के गृहों के नाम हमें महाभारत में मिलते हैं।

सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों के चारों ओर रक्षा-प्राचीर (प्राकार) का निर्माण किया जाता था और दुर्गों तथा नगरों के चारों ओर गहरी खाइयाँ (परिखा) खोदी जाती थी, जिनमें जल भरा रहता था। अतिरिक्त सुरक्षा की दृष्टि से इन खाइयों में जल-जन्तुओं को भी रखा जाता था। एक नगर को चौड़ी बाई की तुलना सागर से की गयी है।

अर्थशास्त्र- ईसवी पूर्व कालीन कौटिल्य के अर्थशास्त्र की वास्तु-विद्या पर थोड़ा सा संकेत यही पर आवश्यक है। इससे ईसा की प्रथम शताब्दी के पूर्व की वास्तु-विद्या के साधारण सिद्धान्तों के स्थिरीकरण में सहायता मिल सकेगी। ईसवी शतक से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ लिखा गया था। इसमें वास्तु विद्या के सिद्धान्तों का सुन्दर विकास प्राप्त होता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में वास्तु-विद्या बोधक सूत्रों से स्पष्ट है कि यह परम्परागत वास्तु-विद्या का सूत्र रूप में संक्षिप्त कर, राजनीति के ग्रन्थ में विषयानुषङ्ग उद्धृत कर इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि उस काल में वास्तुविद्या के मौलिक ग्रन्थ होंगे अन्यथा, वास्तु-हृदय', 'नवभाग', 'वास्तु-देवता', 'कोष्ठक' आदि शब्द कैसे लोग समझ सकते। अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के भवन द्वारों की देव-नामावली जैसे ऐन्द्र, वारुण, याम्य आदि तथा पारिभाषिक शब्द यथा कपिशीर्ष,इन्द्रकोप, हस्तिनख, तल,कपाटयोग,सन्धि, बीज एवं अन्य अनेक ऐसे ही शब्द यथा गोपुर, तोरण, प्रतोली, विष्कम्भ आयाम, उच्छ्रय, अश्रि आदि आदि से तत्कालीन वास्तु-विद्या की प्रोन्नतावस्था की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती हैं।

संक्षेप में ईसवी पूर्व वास्तु-विद्या की रूपरेखा का निम्न प्रकार से स्थिरीकरण किया जा सकता है:-

१. वास्तु-पुरुष- विकल्पन, २. भूमिचयन एवं भूपरीक्षण,३. द्वार- संस्थान, ४.वृक्षारोपण, ५. दारु-आहरण, ६. वास्तु- पद (पद- विन्यास), ७. वास्तु-विद्या तथा ज्योतिष,८. वास्तु-फल,९. स्थपति,१०. पापाणकला तथा मूर्ति-निर्माण-कला, ११. शाल भवन, १२. शंकुस्थापन, १३. हस्त के विभिन्न माप,१४. स्तम्भादि-माप-व्यवस्था, १५.गृह- द्रव्य (पाषाण, इष्टका आदि),१६. भवन,१७. प्रासाद- रचना, १८. वास्तु विद्या की परम्परायें (शैलियाँ श्रादि)

3.3 रामायण में वास्तु का स्वरूप

रामायणकालीन वास्तु के स्वरूप का विवेचन किया जा रहा है। चक्रवर्ती राजा दशरथ के शासनकाल में इस राष्ट्र में वास्तुविद्या अपनी सर्वोच्च शिखर पर थी। अयोध्या नगरी के वास्तुकौशल का वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है। यथा-

आयता दश द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्त महापथा॥

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा॥

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥
(रामायण, बा.का.,5/7-10)

अर्थात् यह अयोध्यापुरी बारह योजन जो 64 मील = लगभग 96 कि०मी० के बराबर होता है, लम्बी तथा तीन योजन अर्थात् 16 मील = 24 कि०मी० चौड़ी थी। जिसमें सुविभक्त महापथों वाले राजमार्ग थे, जिस पर प्रतिदिन जल का छिड़काव तथा पुष्पवृष्टि होती थी। उस पुरी में महाराज दशरथ इन्द्र की भाँति रहते थे। उसमें कपाट, तोरण, सुविभक्त बाजार थे तथा सभी प्रकार के यन्त्र तथा आयुध थे। इसी प्रकार राजा दशरथ के द्वारा किये गये यज्ञ में यज्ञीय वास्तुशास्त्र के अनुसार यज्ञशाला निर्माण की भी चर्चा मिलती है, जिसमें इक्कीस खम्भे तथा पक्की ईंटों से निर्मित यज्ञकुण्ड का विवेचन प्राप्त होता है। जैसे-

कारिता सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः।
शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालङ्कृता भवन्॥

एकविंशति यूपास्त एकविंशत्यरत्नयः।
वासोभिरेक विंशद्भिरेकैकं समलङ्कृताः॥
(रामायण, बा.का.,14/24-25)

इसी प्रकार रामायण के अन्य स्थलों पर भी वास्तुशास्त्र सम्मत ऐसे ही विवरण उपलब्ध होते हैं।

3.4 महाभारत में वास्तु का स्वरूप

महाभारत में भी अनेक स्थलों पर वास्तुविद्या का सुन्दर विवेचन मिलता है। आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों के द्वारा अस्त्र-शस्त्र विद्या का कौशल प्रदर्शन कराने के लिए रङ्गभूमि का निर्माण कराया था। यह रङ्गभूमि वास्तु के अनुसार बनाया गया था। यह प्रसङ्ग महाभारत में प्राप्त होता है कि इस रङ्गभूमि के निर्माण से पूर्व शुभ मुहूर्त में चयनित भूमि पर विधिवत् वास्तुपूजन किया था। तत्पश्चात् आचार्य के शिल्पकारों ने उस रङ्गभूमि में विधिपूर्वक यथोचित एक

विशाल प्रेक्षागृह की नींव रखी। जैसा कि महाभारत में वर्णित है -

रंगभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि।
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः ॥

लाक्षागृह के प्रकरण से भी यह ज्ञात होता है कि महाभारत काल में वास्तुविद्या अत्यधिक समुन्नत था। दुर्योधन ने पुरोचन को चतुःशाल भवन बनाने की आज्ञा दी थी, जिसमें घी, तेल चर्बी तथा मिट्टी में मिलकर लाह का प्रयोग करने को कहा गया था। यथा-

तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृत्तम्।
नगरोपान्तमाश्रित्य करायेथा महाधनम्॥
(म.भा.,आ. प., 143/8)

धर्मराज युधिष्ठिर का विलक्षण सभा भवन भी वास्तुकला का श्रेष्ठ नमूना था। यह सभा भवन दैत्यों के शिल्पकार मय द्वारा निर्मित किया गया था। इसके निर्माण में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का यथोचित पालन किया गया था, जैसे- शिल्पकारों का सम्मान, मंगलानुष्ठान, ब्राह्मण-भोजन,दान-पुण्य तथा भूमि का माप आदि। यथा-

तस्मै युधिष्ठिरः प्रजां यथार्हमकरोत् तदा।
स तु तां प्रतिजग्राह मयः सत्कृत्य भारत ॥

पर्वतों के मध्य बने दुर्ग में यदि किसी पर्वत का शिखर गिर जाता है, तो वास्तुशास्त्र के अनुसार वह अशुभ होता है। श्रीकृष्ण ने जब भीम और अर्जुन के साथ जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज में प्रवेश किया था, तो चैत्यक पर्वत के शिखर को गिरा दिया था। उस समय वेदज्ञ विद्वानों ने इन अपशकुनों की सूचना जरासंध की दी और इस अपशकुन के निवारणार्थ राजा को हाथी पर बैठाकर उसमें चारो और प्रज्वलित अग्नि घुमायी थी। राजा जरासन्ध ने भी अनिष्ट की शांति के लिये व्रत की दीक्षा ली और उपवास किया था -

एतस्मिन्नेव काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः।
दृष्ट्वा तु दुर्निमित्तानि जरासन्धमदर्शयन्॥
पर्यग्नयकुर्वंश्च नृपं द्विरदस्थं पुरोहिताः।
ततस्तच्छान्तये राजा जरासन्धःप्रतापवान्॥
दीक्षितो नियमस्थोऽसावुपवासपरोऽभवत्॥
(महा० भा०,स.प.,२१/२२-२३)

प्राचीन भारत के लोग वास्तुशास्त्र में सम्पूर्ण संसार में आगे थे। मिश्र (मिस्र) के पिरामिडों का निर्माण भी भारतीय शिल्पियों द्वारा ही किया गया है। गृह के 14 प्रकार वास्तुशास्त्र में कहे गए हैं। जिसमें 14 वें प्रकार को प्रायुव कहते हैं। यह एक प्रकार की पनडुब्बी ही होती थी। दुर्योधन इसी प्रकार के प्रायुव नामक गृह में छिप गया था ,जो कि जल के भीतर बना हुआ था।

प्राचीन काल में इस प्रकार 'प्रायुव' नामक गृहों को राजा लोग अपने विश्राम के लिये कुशल शिल्पियों से बनवा लिया करते थे। महाभारत के युद्ध में जब दुर्योधन को ग्यारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गयी, तब दुर्योधन ने पूर्व से बनवाये हुए उस जलस्तम्भी गृह 'प्रायुव' में जाकर विश्राम किया था। वह गृह एक गहरे जलकुण्ड में बना हुआ था-

एकादशचभूभर्त्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पुत्रो गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रथितो हदम्॥

पाण्डवों से हारकर भागा दुर्योधन तालाब में बने पनडुब्बी (प्रायुव) में छुपा था, संजय ने यह बात धृतराष्ट्र को बतायी थी-

ब्रूया: सञ्जय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत॥
(महाभारत,शल्यपर्व,२९/५१)

मार्ग में संजय की भेंट युद्ध में घायल कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा-इन तीन

योद्धाओं से हुई, उन्होंने संजय से दुर्योधन के बारे में जानकारी चाही। तब संजय ने उन्हें उसके सरोवर में छिपने की जानकारी दी-

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत् तं महाह्रदम्।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिप:॥
(महाभारत,शल्यपर्व.अध्याय २९/५४-६१)

वह सरोवर बहुत विशाल था, दुर्योधन उसमें निर्मित 'प्रायुव' में छिपा हुआ था और पाण्डव दुर्योधन की खोज कर रहे थे। वे थककर अपने शिविर में विश्राम करने लगे, तब तक कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा-ये तीनों ही उस सरोवर के तट पर दुर्योधन से मिलने के लिये गये। राजा दुर्योधन उस प्रायुव में शयन कर रहा था। प्रायुव में संचार व्यवस्था उत्तम थी, अतः इन तीनों के जगाने पर दुर्योधन की पनडुब्बी ऊपर आ गयी और तीनों महारथियों से दुर्योधन का वार्तालाप होने लगा।

'यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः ॥
ततः स्वशिविरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः।

ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः॥
सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातस्तं ह्रदं शनैः।

ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः॥
अभ्यभाषन्तं दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि।

राजन्नुत्तिष्ठ युद्धयस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम्।
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि॥
(महाभारत,शल्यपर्व,३०/८-१२)

दुर्योधन ने उन महारथियों ने कहा—'अहो ! बड़े सौभाग्य की बात है कि ऐसे महासंग्राम में मैं आप लोगों को जीवित देख रहा हूँ। हम लोग अभी विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें। तदुपरान्त हम अवश्य विजयी होंगे। मैं आज रात विश्राम करके अपनी थकान तथा घावों को ठीक करना चाहता हूँ, फिर कल प्रातः आप लोगों के साथ जाकर मैं युद्धक्षेत्र में अवश्य ही युद्ध करूँगा-

विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून्श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥
(महाभारत,शल्यपर्व,३०।१८)

इधर पाण्डव दुर्योधन को किसी भी कीमत पर पकड़ने के लिये व्यग्र थे। उनके गुप्तचर चारों ओर दुर्योधन की खोज में लगे हुए थे। उन्होंने दुर्योधन का पता लगाने के लिये पुरस्कार भी घोषित कर रखा था। वनवासी लोगों में महाराज युधिष्ठिर के प्रति अपार सहानुभूति थी। दैवयोग से कुछ व्याध (शिकारी लोग) पानी पीने के लिये उस सरोवर पर आये तो उन लोगों ने कृतवर्मा, कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा के साथ दुर्योधन की बातचीत सुन ली, अतः उन्हें पता चल गया कि दुर्योधन इसी सरोवर में प्रायुव (पनडुब्बी) में छिपा हुआ है। दुर्योधन की खोज में लगे युधिष्ठिर को मार्ग में व्याध मिल गये थे तब उनसे उन्होंने पूछा था कि क्या तुम लोगों को दुर्योधन दिखा है ? अतः उस बात को यादकर व्याधों ने पुरस्कार प्राप्ति की इच्छा से भीमसेन के शिविर में जाकर दुर्योधन के प्रायुव (पनडुब्बी) में छिपे होने का वृत्तान्त युधिष्ठिर को बता दिया, जिसे सुनकर महाबली भीमसेन की बाँछें खिल गयीं। पाण्डव भी बहुत प्रसन्न हुए-

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम्।
तस्मै सर्वमाचख्युर्यद्वृत्तं यच्च वै श्रुतम्॥
ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु।
धर्मराजाय तत्सर्वमाचचक्षे परन्तपः॥ (महाभारत शल्यपर्व २०/४१-४२)

भीमसेन ने सूचना देने वाले व्याधों को धन देकर विदा किया और युधिष्ठिर के नेतृत्व में वे सभी पाण्डव वीर अपने सैनिकों समेत उस सरोवर पर गये, जिसमें चमत्कारिक ढंग से सारी सुविधाओं के साथ दुर्योधन रह रहा था। वह हाथ में गदा लिये हुए लेटा हुआ था तथा शयन मुद्रा में ही कृतवर्मा आदि से बातचीत कर रहा था। उस समय पनडुब्बी पानी के ऊपर थी। जैसे ही युधिष्ठिर की सेना का कोलाहल सुनाई पड़ा, कृतवर्मा ने दुर्योधन को इसकी सूचना दी और वे कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा के साथ वहाँ से दूर हटकर छिप गये। पनडुब्बी फिर जल के भीतर छिप गयी। अब उसे किसी भी मनुष्य के लिये देखना पूर्णतः असम्भव था। परन्तु दुर्योधन को जल के भीतर भी पाण्डव सेना का तुमुल शब्द सुनायी पड़ रहा था-

द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत्।
शीतामजलं ह्रदं द्वितीयमिव सागरम्॥

मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत् ते स्थितः सुतः।
अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत॥

सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित् प्रभो।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः॥
(महाभारत,शल्यपर्व,३०।५४-५६)

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ ही थे, अतः उस द्वैपायन सरोवर पर जाकर युधिष्ठिरादि ने इस विषय पर भगवान् से परामर्श किया। युधिष्ठिर ने देखा कि सरोवर का जल यथावत् लहरों से परिपूर्ण है। माया (विज्ञान) के इस चमत्कार पर महाराज युधिष्ठिर विस्मित हो रहे थे। भगवान् ने

युधिष्ठिर से दुर्योधन को चुनौती देने को कहा । युधिष्ठिर ने चुपचाप लेटे दुर्योधन को व्यङ्गोक्तियों द्वारा उत्तेजित किया । अतः पाण्डवों के द्वारा फटकारे जाने पर दुर्योधन प्रायुव (पनडुब्बी) से बाहर आ गया और भीमसेन के साथ गदायुद्ध में मारा गया ।

'प्रायुव' के निर्माण का उद्देश्य- प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के विज्ञानों के साथ वास्तुशास्त्र भी अपनी चरमसीमा पर था इस बात की पुष्टि के लिये महाभारत की यह घटना यहाँ पर दी गयी है । जल के भीतर इन 'प्रायुव' नामक गृहों के निर्माण का उद्देश्य क्या था ? यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है । उस काल में इनके निर्माण के उद्देश्य निम्न थे-

१. सात्त्विक प्रकृति के लोग (ऋषि-मुनि इत्यादि) एकान्त तपस्या के लिये इनका उपयोग करते थे । इनमें सांसारिक विघ्न-बाधाओं से बचे रहकर वे मनुष्य और समाज से दूर रहते थे । उनको निजी जिन्दगी में बाहरी हस्तक्षेप नहीं रहता था । अनेक ऋषियों द्वारा वर्षों तक सुरक्षित रूप से जल में रहकर तपस्या करने का उल्लेख भारतीय पुराणों में मिलता है । 'प्रायुव' शब्द निजीपन का बोधक है । महर्षि सौभरि भी प्रायुव में रहकर तप करते थे । देववाणी संस्कृत का यह शब्द निजीपन के अर्थ में ही अंग्रेजी में Private तथा Privacy हो गया है । ये इसी वैदिक 'प्रायुव' शब्द से ही व्युत्पन्न हैं । यह शब्द यूरोप की प्राचीन भाषा लैटिन में Privatus तथा Privus आदि रूपों में विद्यमान है ।

२. राजा लोग, जो समृद्ध होते थे, वे इसका उपयोग विश्राम के लिये करते थे । जल के भीतर होने से इसका तापमान सदैव वातानुकूलित होता है । इससे शरीर को पूर्ण विश्राम मिलता है, साथ ही शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति भी बढ़ जाती थी । मानसिक तनाव भी दूर हो जाता था; क्योंकि जल की गहराई में सूर्य की किरणों का तीव्र प्रकाश नहीं पहुँच पाता है, अतः मानसिक शान्ति बनी रहती थी।

३. तामसी जन अपने प्रतिपक्षियों से बचने के लिये उनका उपयोग करते थे और छिपकर निष्क्रिय होकर पड़े रहते थे । मगरमच्छ की भाँति पड़े रहते थे; क्योंकि 'प्रायुवों' का अर्थ आलस्य या आलसी जैसा भी है । जिसके समानार्थी प्रमाद, अनुत्साह आदि भी हैं । यजुर्वेद के इस मंत्र में देवताओं से अप्रायुव रहकर रक्षा की प्रार्थना की गयी है-

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥

(यजुर्वेद २५/१४)

लाक्षागृह – विश्वकर्मप्रकाश ग्रन्थ में 'जातुषगृह' का उल्लेख है । जातुष का अर्थ लाख या लाही होता है । संस्कृत में इसे लाक्षा कहते हैं । आज के समय में कृत्रिम वस्तुओं के निर्माण में जैसा प्रयोग प्लास्टिक तथा नायलोन का होता है । उससे अधिक प्रयोग प्राचीन काल में लाख का होता था । परन्तु निर्माण के अतिरिक्त लाख का प्रयोग आरोग्यकारक औषधि के रूप में भी होता था । परन्तु आज तो लोग 'लाख' क्या वस्तु थी, इसे तो छोड़िये उसका नाम भी भूल रहे हैं।

लाख को संस्कृत में लाक्षा, पलङ्कषा, अलक्त, याव, वृक्षामय, जतु, ब्राह्मणी, अङ्गारवल्ली, खरशाखा, हञ्जिका आदि कहा गया है । अंग्रेजी में इसे Lac, Cocous lacca (कॉकस लक्का) तथा Tachardia lacca (टकार्डिआ लक्का) कहा जाता है ।

लाख- पुराने पीपल, ढाक, वट तथा बेर आदि की टहनियों पर एक प्रकार के सूक्ष्म कीड़ों द्वारा निर्मित रक्ताभ या गाढ़े भूरे रंग का एक पदार्थ है। इसमें पीपल वृक्ष पर बनने वाली लाख श्रेष्ठतम होती है, वैशाख तथा आश्विन मास में इसे वृक्षों से निकालकर सुखाया जाता है, फिर उसको लम्बी थैलियों में भरकर गरम किया जाता है।

3.5 अर्थशास्त्र में वास्तु का स्वरूप

अर्थशास्त्र में नगर योजना सम्बन्धी विविध पक्षों के अवलोकन के बाद निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचार्य ने इस सम्बन्ध में जो भी सुझाव दिये हैं वे पूर्व परम्पराओं पर ही आधारित हैं। परन्तु उनके व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करने का प्रथम श्रेय उन्हें अवश्य जाता है। कौटिल्य ने नगर योजना में नगरों की सुरक्षा को सबसे पहले प्राथमिकता दी। नगर निवेश के अन्तर्गत विविध वास्तु संरचनाओं एवं पुरवासियों के वर्ण एवं जातिगत भेद के आधार पर स्थान निर्धारण करते समय आचार्य ने उनके प्रकार्यात्मक उपयोगिता को विशेष महत्त्व दिया। चूँकि नगर राज्य के शौर्य प्रदर्शन का एक माध्यम भी होता था अतः उनके नगर वास्तु विषयक सन्दर्भों में भव्यता सर्वत्र दिखती है। अर्थशास्त्र में वर्णित नगर वास्तु सम्बन्धी ये परम्परा आगे भी चलती रही। भले ही विशुद्ध रूप से वास्तु शास्त्र सम्बन्धी मौर्य काल के कई शताब्दियों बाद लिखे गए परन्तु अन्य साहित्य में बिखरे हुये वास्तुशास्त्र सम्बन्धी शब्दों से इस तथ्य की पुष्टि अवश्य होती है। कालान्तर में विशुद्ध रूप से इस विषय पर मानसार एवं समरांगणसूत्रधार ग्रन्थ भी उन्हीं मानकों का निर्वहन करते हैं। अर्थशास्त्र में दुर्ग निर्माण और दुर्ग सन्निवेश की क्या अवधारणा थी ? उस पर थोड़ी चर्चा करते हैं। तो आइये सबसे पहले दुर्ग निर्माण की पद्धति को जानते हैं।

दुर्ग निर्माण

आचार्य कौटिल्य लिखते हैं कि जनपद-सीमाओं की चारों दिशाओं में राजा युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये। दुर्ग चार प्रकार के हैं- १ औदक २. पार्वत ३. धान्वन और ४. वनदुर्ग। चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आवृत स्थान- प्रदेश औदकदुर्ग कहलाता है। बड़ी-बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप मे निर्मित दुर्ग पार्वत दुर्ग कहलाता है। जल तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग धान्यन दुर्ग है। इसी प्रकार चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत दुर्ग वनदुर्ग कहलाता है। इनमें ओदक तथा पार्वतदुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते हैं। धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते हैं। अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों मे भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता है।

राजा को चाहिए कि धनोत्पादन के मुख्य केन्द्र बड़े-बड़े स्थानीय नगरी का निर्माण करवाये। वास्तुविद्या के विद्वान् जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बतायें, वही पर नगर बसाना चाहिए अथवा किसी नदी के संगम पर, बड़े-बड़े तालाब के किनारे, या कमलयुक्त जलाशय के तट पर भी नगर बसाये जा सकते हैं। नगर का निर्माण सम्बन्धित भूमि के अनुसार गोल, लम्बा अथवा चौकोर, जैसा भी उचित हो, होना चाहिए। उसके चारों ओर छोटी-छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य रहे। उसके इधर- उधर को भूमि में पैदा होने वाली विक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह तथा उनके विक्रय का प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिए। नगर में आने-जाने के लिए जलमार्ग और स्थल मार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिए। नगर के चारो ओर एक-एक दण्ड (चार हाथ) की दूरी पर

तीन खाइयां खुदवानी चाहिए। ये खाइयां क्रमशः चौदह, बारह और दस दण्ड चौडी होनी चाहिए। जितनी ये चौडी हो उससे चौथाई अथवा आधी गहरी होनी चाहिए। अथवा चौडाई का तीसरा हिस्सा गहरी भी हो सकती है। उन खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बँधी हो। उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईटों से मजबूत बनी हुई हो। कहीं-कहीं खाइयाँ इतनी कम गहरी हो कि जहाँ से जल बाहर की ओर छलकने लगे अथवा किसी नदी के जल से इन्हें भरा जा सके। उनमें जल के निकलने का मार्ग अवश्य रहना चाहिए। कमल के फूल तथा घडियाल आदि जलचर भी उनमें रहे। यथा-

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् ,अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहा वा पार्वतं निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्तम्भगहन वा वनदुर्गम् । तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा ।जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेद् । वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वा विशोपस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम् । तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् । चतुर्दश द्वादश दशेति दण्डान् विस्तीर्णाः विस्तारादवगाद्याः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकावद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा या सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीः। (अ., प्र.19,अ. 3,पेज-८५,८६)

खाई से चार दण्ड की दूरी पर छह दण्ड ऊँचा, सब ओर से मजबूत और ऊपर की चौड़ाई से दुगुनी नींव वाला एक बडा वप्र बनवाया जाय। इसके बनवाने में वही मिट्टी काम में लाई जाय, जो खाई से खोदकर बाहर फेंकी गई है। प्राकार (वप्र) तीन प्रकार का होना चाहिए- १.ऊर्ध्वचय, २. मञ्चपृष्ठ और ३. कुम्भकुक्षिक, अर्थात् क्रमशः ऊपर पतला, नीचे चपटा और बीच में कुम्भाकार। इन प्राकारों को बनवाते समय इनकी मिट्टी को हाथी और बैलों से अच्छी तरह रौंदवाना चाहिए, जिससे कि मिट्टी बैठकर मजबूत हो जाए। इनमें चारों ओर काँटेदार विषैली झाडियाँ लगी होनी चाहिए। प्राकार बन जाने पर यदि मिट्टी बची रह जाय तो उसे उन्हीं गड्ढों में भर देना चाहिए, जहाँ से उसको खोदा गया है, अथवा उस अवशिष्ट मिट्टी से प्राकार के जो छिद्र रह गए हों, उन्हें भरवा देना चाहिए। वप्र बन जाने पर उसने उपर दीवार बनवानी चाहिए। यह दीवार चौडाई से दुगुनी ऊँची हो, कम-से-बम बारह हाथ से लेकर चौदह, सोलह, अठ्ठारह सम सख्याओं में अथवा पन्द्रह, सत्रह आदि विषम सख्याओं मे अधिक से अधिक चौबीस हाथ तक भी होनी चाहिए। प्राकार का ऊपरी भाग इतना चौडा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके। ताड वृक्ष की जड़ के समान, मृदंग बाजे के समान, बदर की खोपड़ी के समान आकार वाले ईंट-पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े-बड़े शिलाखण्डों से प्राकार का निर्माण करवाना चाहिए। लकडी का प्राकार कभी भी न बनवाना चाहिए, क्योंकि उसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है। यथा-

चतुर्दण्डावकृष्ट परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्विगुणविष्कम्मं खाताद्वप्र कारयेत्; ऊर्ध्वचयं, मञ्चपृष्ठं, कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्ण कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तम् । पासुशेषेण वास्तुच्छिद्रं पूरयेत् । वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्मद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्ता- दूर्ध्वमोजं युग्म वा आचतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् । रथचर्यासञ्चारं तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकै- श्चाचिताग्रं पृथुशिलासंहितं वा शैलं कारयेत् न त्वेव काष्ठमयम् । अग्निरवहितो हि

तस्मिन्वसति। (अ.,प्र.19,अ. 3,पेज-८६,८७)

प्राकार के आगे एक ऐसी अट्टालिका बनवाये जिसको लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के वरावर हो। ऊँचाई के अनुपात से उस पर सीढियाँ भी बनवानी चाहिए। ये अट्टालिकाएं एक-दूसरे से तीस दण्ड की दूरी पर हो। दो अट्टालिकाओं के बीच चौड़ाई से डेढ़ गुना लम्वा प्रतोली नाम का एक पर बनवाना चाहिए, जिसकी दूसरी मंजिल में जनानखाना रहे। अट्टालिका और प्रतोली के बीच मे इन्द्रकोप नामक एक विशिष्ट स्थान बनवाया जाय। वह इतना ही बडा हो जिसमें तीन धनुर्धारी सतरी आसानी से बैठ सकें। उसके आगे छिद्रयुक्त एक ऐसा तख्ता लगा रहना चाहिए,जिससे धनुर्धारी बाहर की वस्तु देख सकें और भीतर से ही निशाना बाँध सकें, किन्तु बाहर के लोग उन्हें न देख सकें। प्राकार के साथ ही एक ऐसा देवपथ (गुप्तमार्ग या सुरंग) बनवाना चाहिए जो अट्टालक, प्रतोली तथा इन्द्रकोप के बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के पास आठ हाथ चौड़ा हो। इसी प्रकार एक दण्ड या दो दण्ड की दूरी पर चार्या अर्थात् प्राकार आदि पर चढने उतरने का स्थान बनवाना चाहिए। प्राकार के ऊपर ही जिस स्थान को कोई न देखने प्रधावितिका तथा उसके पास ही निष्कुहद्वार भी बनवाने चाहिए। बाहर से छोड़े गये बाण आदि से सुरक्षित रहने के लिए छिपने योग्य आड़ को प्रधावितिका कहते हैं। उसमें निशाना मारने के लिए जो छिद्र बनाया जाता निष्कुहद्वार कहा जाता है।

विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत्,त्रिंशद्दण्डान्तरं च। द्वयोरट्टालकयोमध्ये सहर्म्यद्वितलामध्यर्धायामा प्रतोलीं कारयेत्। अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सापिधानच्छिद्रफलकसंहितमितोन्द्रकोश कारयेत्। अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भ पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारम् अष्टहस्तायतं देवपथ कारयेत्। दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वाचार्याः कारयेद्; अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च। (अ.,प्र.19,अ. 3,पेज-८७)

प्राकार की बाहरी भूमि में शत्रुओं के घुटनों को तोड़ देने वाले खूँटे, त्रिशूल,अँधेरे गड्ढे, लौह-कंटक के ढेर, साँप के काँटे, ताडपत्रों के समान बने हुए लोहे के जाल, तीन नोक वाले नुकीले काँटे, कुत्ते की दाढ़ के समान सोहे की तीक्ष्ण कीलें, बड़े-बड़े लट्टे, कीचड़ से भरे हुए गढ़े, आग और जहरीले पानी के गढ़े आदि बनाकर दुर्ग मार्ग को पाट देना चाहिए। जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो, वहाँ पहिले प्राकार के दोनों भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा-चौड़ा मण्डप (चबूतरा) बनाया जाय। तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोली के समान छह खम्भे खड़े करके द्वार का निर्माण करवाया जाए। द्वार का निर्माण पाँच दण्ड परिधि से करना चाहिए और तदनन्तर एक-एक दण्ड़ बढ़ाते हुए अधिक से अधिक आठ दण्ड तक उसकी परिधि होनी चाहिए, अथवा, कुछ विद्वानो के मत से दरवाजा दो दण्ड का हो या नीचे के आधार के परिमाण से छठा तथा आठवां हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाय। दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई पन्द्रह हाथ से लेकर अट्ठारह हाथ तक होनी चाहिए। खम्भों की मोटाई उसकी उसकी ऊँचाई से छठा हिस्सा होनी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग भूमि मे गाड दिया जाये और चौथाई भाग खम्भे के उपर चूल के लिए छोड़ दिया जाये। प्रतोलिका में तीन तलों में से पहिले तले के पाँच हिस्से किए जाय। उनमें से बीच के हिस्से में बावडी बनवाई जाय, उसने दायें-बायें झाला और शाला के छोरों पर सीमागृह बनायें जाए। शाला के किनारों पर भी आमने-सामने छोटे- छोटे दो चबूतरे बनवाये जिन पर बुर्जे भी हो। शाला और सीमागृह के बीच में आणि (एक छोटा दरवाजा) होना चाहिए। मकान को दूसरी मंजिल की ऊँचाई पहली मंजिल की ऊंचाई में आधी होनी चाहिए, उसकी छत के नीचे सहारे के लिए छोटे-छोटे भी खंभे होने चाहिए। मकान की

तीसरी मंजिल को उत्तमागार कहते हैं, उसकी ऊंचाई डेढ़ दण्ड होनी चाहिए। उत्तमागार परिमाण द्वार का तृतीयांश होना चाहिए। उसके पार्श्व भाग पर पक्की ईंटो से मजबूत होने चाहिए। उसकी बाई और घुमावदार सीढियाँ और दाहिनी ओर गुप्त सीढियां होनी चाहिए। किले के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। दोनों फाटक तीन या पांच तख्तों की पर्त के बने हो। किवाडों के पीछे दो-दो अर्गलाएँ होनी चाहिए। किवाड़ों को बन्द करने के लिए एक अरत्नि परिमाप (एक हाथ) की इन्द्रकील (पटखनी) होनी चाहिए। फाटक के बीच में पांच हाथ का एक छोटा या दरवाजा जुड़ा होना चाहिए। पूरा दरवाजा इतना बड़ा होना चाहिए कि जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें। द्वार की ऊंचाई का आधा, हाथी के नाखून के आकार प्रकार का मजबूत लकड़ी का बना हुआ ऐसा मार्ग होना चाहिए जिससे यथा अवसर किले में टहला जा सकें। प्राकार की ऊंचाई जितना किन्तु उसके तृतीयांश जितना, गोह के मुंह के आकार का एक नगरद्वार भी बनवाना चाहिए। प्राकार के बीच में एक बावड़ी बनाकर उसे संबद्ध एक द्वार भी बनवायें। उस द्वार को पुष्करिणी कहते हैं। जिस दरवाजे के आसपास चारशालाएं बनाई जाए और उस दरवाजे में पुष्करिणी द्वार से ड्योटा दरवाजा लगा हो, उसका नाम कुमारीपुरद्वार है। जो दरवाजा दुमजिला हो एवं जिस पर कमूरे आदि न लगे हो, उसे मुण्डकद्वार कहते हैं। इस प्रकार राजा अपनी भूमि और संपत्ति के अनुसार जैसा उचित समझे, कुछ परिवर्तन करके दरवाजों को बनवाये। किले के अन्दर की नहरें सामान्य नहरों से तिगुनी चौडी बनवाये, जिनके द्वारा हर प्रकार का सामान अन्दर और बाहर ले जाया लाया जा सके। पत्थर, कुदाली, कुल्हाडी, बाण, हाथियों का सामान, गदा, मुद्गर, लाठी, चक्र, मशीनें, तोपें, लोहारी के औजार, लोहे का बना सामान, नुकीले भाले, बाँस, ऊँट की गर्दन के आकार वाले हथियार, अग्निबाण आदि सामान नहर के द्वारा लाया और ले जाया जाता है। यथा -

तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः।
मुसुण्डिमुद्गरा दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः॥
कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः।
उष्ट्रग्रीव्योऽग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः॥
(अ.,द्वि.अ.,अ.3,पृ. 90)

दुर्ग सन्निवेश

दुर्ग से सम्बन्धित राजभवनों तथा नगर के प्रमुख स्थानों का निर्माण-

वास्तुविद्या विशेषज्ञों के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर निर्माण के लिए चुना जाए उसमें पूरब से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन तीन राजमार्ग हो। इन छह राजमार्गों में नगर निर्माण या गृह निर्माण की भूमि का विभाग करना चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह द्वार हो, जिसमें जल, थल तथा गुप्त मार्ग बने हो। नगर में चार दण्ड (२४ फीट) चौड़ी रथ्याएँ (छोटी गलियाँ) हो। राजमार्ग, द्रोणमुख (चार सौ गाँवो का मुख्य केन्द्र), स्थानीय (आठ सौ गाँव का मुख्य केन्द्र) राष्ट्र, चरागाह, स्थानीय (व्यापारी मडियाँ), सैनिक छावनियाँ, श्मशान और गाँवो की ओर जाने वाली सभी सड़कों की चौड़ाई आठ दण्ड (१६ गज) होनी चाहिये। जलाशयों तथा जगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौड़ाई चार दण्ड होनी चाहिये। हाथियों के आने-जाने का मार्ग और खेतों को जाने वाला रास्ता दो दण्ड चौडा होना चाहिये। रथों के लिए पाँच अरत्नि (ढाई गज) और पशुओं के चलने का रास्ता दो गज चौडा होना चाहिये। मनुष्य तथा भेड़-बकरी आदि छोटे पशुओं के लिए एक गज चौड़ा रास्ता

होना चाहिए। नगर के सुदृढ भूमिभाग में राजभवनों का निर्माण कराना चाहिए, साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह भूमि चारो वर्णो की आजीविका के लिए उपयोगी हो। गृह भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवें हिस्से में, निशात प्रणिधि प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार, अन्त:पुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसका द्वार पूरब या पश्चिम की ओर हो। अन्त:पुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय और मंत्रियों के भवन बनवाना चाहिए। अन्त:पुर के पूर्व- दक्षिण भाग में महानस (रसोईघर), हस्तिशाला और कोष्ठागार (भण्डार) हो। उसके आगे पूरब दिशा में इत्र, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवासस्थान होने चाहिए। दक्षिण पूरब में भण्डागार, राजकीय पदार्थो के आय व्यय का स्थान और सोने-चांदी की दुकानें होनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम दिशा मे शस्त्रागार तथा सोने चांदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिये। उससे आगे दक्षिण दिशा मे नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापाराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवासस्थान होने चाहिए। पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊँटों एवं गधों के गुप्ति स्थान (तबेले) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थायी घर बनवाया चाहिए। पश्चिम उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि सवारियों को रखने के स्थान होने चाहिए। उसके आगे पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले, हथियार और उनके स्थान बनवाने वाले और अन्यों का स्थान होना चाहिए। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थो को बेचने-खरीदने का बाजार और औषधालय होने चाहिए। उत्तर-पूरब में कोपगृह और गाय, बैल तथा घोडों के स्थान बनवाने चाहिए। उसके आगे, पूरब दिशा की ओर नगरदेवता, कुलदेवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाये जाना चाहिए। नगर के ओर-छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाना चाहिए।

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपयः । चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः । राजमार्ग द्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्रामपथाश्चाष्टदण्डा। चतुर्दण्डः सेतुवनपथः । द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः । पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथो द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः । प्रवोरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वण्यं समाजीये । वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत्। तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यं पुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः । पूर्वदक्षिणं भाग महानस हस्तिशाला कोष्ठागार च । ततः पर गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारव क्षत्रियाश्च पूर्वा दिशमधिवसेयुः । दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डागारमक्षपटल कर्मनिपद्याश्च। दक्षिणपश्चिमं भाग कुप्यगृहमायुधागारं च । तत पर नगर धान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वाग्नसुरामासपण्या रूपाजीवास्तालावचरा वैश्याश्च दक्षिणा दिशमधिवसेयुः । पश्चिमदक्षिण भाग खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च। पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशाला। तत् पर ऊर्णासूत्रवेणुधर्मवर्मशस्नावरणकारवः शुद्राश्च पश्चिमा दिशमधिवसेयुः । उत्तरपश्चिम- भागं पण्यभैषज्यगृहम् उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवाश्वं च । तत परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरा दिशमधिवसेयुः। वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः। (अ.,च.अ.प्र. 20,पृ. 91-92)

दुर्गा, विष्णु, जयन्त, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मंदिरा, इन देवताओं की स्थापना नगर के बीच मे करनी चाहिये। कोष्ठागार आदि में भी कुलदेवता या नगरदेवता की

स्थापना करनी चाहिये। प्रत्येक दिशा के मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठाता देवता की स्थापना करनी चाहिए। उत्तर का देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति (कुमार) होता है। नगर की परिखा से बाहर दो सौ गज को दूरी पर पुण्यस्थान, उपवन और सेतुबन्ध आदि स्थानों की रचना और यथास्थान दिग्देवताओं की भी स्थापना की जानी चाहिए। नगर के उत्तर या पूरब में श्मशान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में छोटी जाति वाले लोगों का श्मशान होना चाहिए। जो भी इस नियम का उल्लंघन करे उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था। कापालिकों और चाण्डालों का निवासस्थान श्मशानों के ही समीप बनवाया जाये। नगर में बसने वाले परिवारों को उनके अध्यवसाय तथा उनके योग्य भूमि की गुञ्जायश देखकर ही बसाया जाय। उन खेतों मे फूल, फल, साग-सब्जी, कमल आदि का क्यारियाँ बनाई जाए। राजा तथा राजपुरुष की आज्ञा प्राप्त कर उनमें अनाज तथा विक्रय योग्य वस्तुएं पैदा की जायें। दशकुलीबाट (बीस हलों से जोती जाने योग्य भूमि) के बीच सिंचाई के लिए एक कुआँ होना चाहिए। घी, तेल, इत्र, क्षार, नमक, दवा, सूखे साक, भूसा, सूखा मांस, घास, लकडी, लोहा, चमड़ा, कोयला, तांत, विप, सींग, बाँस, छाल, चन्दन या देवदारु की लकडी, हथियार, कवच और पत्थर इन सभी वस्तुओं को दुर्ग के अन्दर इतनी तादात में जमा होना चाहिये कि कई वर्षों तक उपयोग में लाने के लिए वे पर्याप्त हों। उनमें पुरानी वस्तु की जगह नई वस्तु रख देनी चाहिए। हाथी, घोडे, रथ और पैदल इन चारों प्रकार की सेनाओं को अनेक सुयोग्य सेनाध्यक्षों के सरक्षण मे रखा जाना चाहिए। क्योंकि अनेक सेनाध्यक्षों की नियुक्ति से पहिला लाभ तो यह है कि पारस्परिक भय के कारण वे शत्रु में जाकर नहीं मिल पाते और दूसरा लाभ यह है कि एक अध्यक्ष के फूट जाने पर दूसरा अध्यक्ष उसका कार्य सम्भाल सकता है। इन नगरों के निर्माण के नियमों के अनुसार ही जनपद की सीमा के दुर्ग और उनके प्रबन्ध का विधान समझ लेना चाहिये। राजा को चाहिए कि वह नगर में ऐसे लोगों को न बसने दे, जिनके कारण राष्ट्र तथा नगर का नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय स्तर गिरता हो। यदि इनको बसाना हो तो सीमा प्रान्त में बसाया जाय और उनसे राज्यकर वसूल किया जाय।

हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत्। अनेकमुख्य हि परस्परभयात् परोपजाप नोपैतीति। एतेनान्तपालदुर्गसस्कारा व्याख्याताः।

न च वाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान्।
क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वादापयेत्करान्॥

इस प्रकार वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि का अध्ययन करते हैं तो हमें अनेक ऐसे प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि उस काल में भी वास्तुविद्या अपनी समुन्नत अवस्था में थी। प्रासाद आदि के निर्माण में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का सम्यक्तया अनुपालन किया जाता था।

3.6 सारांश

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में वास्तुकला का उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र में जो शब्द कारीगरों के लिए प्रयुक्त होते हैं, उन्हीं शब्दों का प्रयोग रामायण में स्थपति, वर्धकी आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि कृत रामायण में चार प्रकार के दुर्ग बतयाए गए हैं- नादेय, गिरि, वन और मानव निर्मित दुर्ग। इसी प्रकार महाभारत में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है- धान्य दुर्ग, महि दुर्ग, गिरि दुर्ग, मानुष्य दुर्ग, मृद् दुर्ग तथा वन दुर्ग। सुरक्षा की दृष्टि से

इन दुर्गों के चारों ओर रक्षा-प्राचीर का निर्माण किया जाता था। अर्थशास्त्र में भी चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख प्राप्त होता है- औदक दुर्ग, पार्वत दुर्ग, धन्वान दुर्ग तथा वन दुर्ग। अर्थशास्त्र के जनपद निवेश नगरेतर वास्तु योजना पर प्रकाश डालने पर विविध प्रकार के बस्तियों का परिज्ञान होता है। ये हैं-ग्राम, स्थानीय, द्रोणमुख, कार्वटिक एवं संग्रहण। नगरों की आन्तरिक योजना दुर्ग निवेश का प्रतिपाद्य विषय है।इन्हीं प्रमुख विषयों का अपलोगों ने इस इकाई में अध्ययन किया।

3.7 शब्दावली

औदक दुर्ग – चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आवृत्त स्थल प्रदेश को औदक दुर्ग कहते हैं।

पार्वत दुर्ग – बड़ी- बड़ी चट्टानों तथा पर्वत की कंदराओं के रूप में निर्मित दुर्ग पार्वत दुर्ग कहलाता है।

धान्वन दुर्ग – जल तथा घास-फूस से रहित तथा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग धान्वन दुर्ग कहलाता है।

वन दुर्ग – चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत्त दुर्ग, वन दुर्ग कहलाता है।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. रामायणकालीन वास्तु कला पर प्रकाश डालिये।
2. अर्थशास्त्र में वर्णित दुर्ग निर्माण विधि को विवेचित कीजिये।
3. महाभारतकालीन वास्तु के स्वरूप पर निबन्ध लिखिये।
4. कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में वास्तु योजना को व्याख्यायित कीजिये।
5. अर्थशास्त्रीय दुर्ग निवेश प्रविधि को प्रकाशित कीजिये।

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय वास्तुकला का इतिहास, कृष्णदत्त वाजपेयी,हिन्दी समिति, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 1972।
2. समरांगणसूत्रधार, अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू एवं प्रो. भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2017।
3. मयमतम्, अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2019।
4. विश्वकर्मप्रकाश, लेखक- महर्षि अभय कात्यायन,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019।
5. वास्तुरत्नवाली, डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा ओरियंटालिया,दिल्ली,2009।
6. भारतीय वास्तुशास्त्र,महादेव प्रासाद शुक्ल, वास्तुवाङ्मय प्रकाशनशाला, लखनऊ।
7. कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, व्याख्याकार-वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1984।